पुरूषोत्तमदास डालमिया

बनाम

पश्चिम बंगाल राज्य

(के. सुब्बा राव और रघुबर दयाल, जे.जे.)

आपराधिक विचारण-क्षेत्राधिकारिता--अपनी क्षेत्राधिकारिता में किये गये आपराधिक षडयंत्र का विचारण करने वाले न्यायालय ऐसे षड़यंत्र के अनुसरण में किए गए अपराध का विचारण कर सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता 1898 *की धारा 177, 335, 339 (ए½* ***भारतीय दंड संहिता 1860*** *** धारा 120 बी 466] 471।*

अपीलार्थी को सेशन न्यायालय द्वारा] कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा आयात लाइसेंस के संदर्भ में अपराध अंतर्गत धारा 471 सपठित 120 बी तथा धारा 471, 466 भारतीय दंण्ड संहिता के अंतर्गत दोष सिद्घ किया गया। उसकी विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्घि व दण्डादेश के विरूद्घ अपील उच्च न्यायालय द्वारा सरसरी तौर पर खारिज की गई थी। यद्यपि कलकत्ता में षडयंत्र का अपराध कारित किया गया। कूटरचित दस्तावेजों को असली के रूप में उपयोग करने का अपराध मद्रास में किया गया। अपीलार्थी की ओर से इस न्यायालय में यह दलील दी गई थी कि वह अपराध कलकत्ता न्यायालयों के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकारिता के बाहर किए गए थे। उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 471 सपठित 466 के अपराध के

विचारण करने की कोई क्षेत्राधिकारिता नहीं थी। भले ही वह षड़यंत्र के अनुसरण में और एक ही संव्यवहार के संबंध में किए गए हों।

अभिनिर्धारित, षडयंत्र के अनुसरण में किये गये सभी प्रत्यक्ष कार्यों का विचारण एक साथ किये जाने की आवश्यक स्वाभाविक है और दण्ड प्रक्रिया की धारा 177 और 239 का सही अर्थ लगाने पर कोई संदेह नहीं रह जाता कि न्यायालय को आपराधिक षडयंत्र के विचारण की अधिकारिता के साथ उसके अनुसरण में किए गए प्रत्यक्ष कार्यों को विचारण करने की अधिकारिता भी है। भले ही वे प्रादेशिक क्षेत्राधिकारिता से बाहर किए गए हों।

जीवन बनर्जी बनाम राज्य ए.आई.आर 1959 कल. 500 पलटना।

प्रीतम सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर 1956 एस.सी. 415 सन्दर्भित किया गया।

बाबूलाल चौखानी बनाम दा किंग एम्परर, (1938) L.R.65 I.A. 58, पर भरोसा किया गया।

दंड प्रक्रिया संहिता के सुसंगत प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि आपराधिक न्यायालयों को दो प्रकार से क्षेत्राधिकारिता है। एक विशिष्ट अपराध के विचारण के बारे में दूसरा प्रादेशिक क्षेत्राधिकारिता। जबकि पूर्व प्रकार किसी मामले की जड़ तक जाता है औार इसका उल्लंघन संपूर्ण

विचारण शून्य कर देता है और बाद वाला बाध्यकारी नहीं है। विचारण का स्थान खुला छोड़ देता है।

सहायक सेशन न्यायाधीश उत्तरी आरकोट बनाम रामा स्वामी असारी, (1914) आई.एल.आर 38 मद्रास 779, संदर्भित।

यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 और 239(ए) अभिव्यक्त रूप से यह प्रावधान विहित नहीं करती है किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे अपराधों के और उससे संबंधित व्यक्तियों के एक ही न्यायालय में संयुक्त विचारण को विहित करते हैं चाहे सभी अपराधों जिनका विचारण किया जा रहा है, प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर घटित नहीं हुये हों। केवल एक ही परिसीमा है कि ऐसे अपराध एक ही संव्यवहार के सामान्य अनुक्रम में घटित होने चाहिये। इसलिए संहिता की धारा 177, धारा 239 को नियंत्रित नहीं करती है।

किसी उपबंध के विधायी संशोधन के अभाव में किसी विधान के विशिष्ट निर्वचन के संबंध में विधायिका के अनुमोदन की उपधारणा नहीं की जा सकती जब तक कि इस संबंध में निर्वचन के निर्णयों की सतत श्रृंखला नहीं हो।

केस कानून पर चर्चा हुई।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारिता : आपराधिक अपील 1959 की संख्या 51।

कलकत्ता उच्च न्यायालय की आपराधिक अपील 1958 की संख्या 2 के दिनांक 16 मई, 1958 के निर्णय व आदेश की विशेष अनुमति द्वारा अपील।

ए.एस.आर. चारी, के.सी.जैन बनाम बी.पी. माहेश्वरी अपीलार्थी की ओर से।

एन.सी चटर्जी, एच.आर खन्ना और डी गुप्ता प्रत्यर्थी की ओर से।

19 अप्रैल.1961. न्यायालय का निर्णय पारित किया गया।

रघुवर दयाल, जे. द्वारा- यह अपील, कलकत्ता उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 16 मई, 1958 के विरुद्घ विशेष अनुमति द्वारा की गई जिसमें अपीलार्थी की अपील सरसरी तौर पर कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जूरी द्वारा की गई दोषी ठहराया जाने के विरुद्घ की गई, खारिज कर दी गई। जिसमें अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता के अपराध अंतर्गत धारा 471 सपठित 120 बी और दो मामले भारतीय दंड संहिता की धारा 471 सपठिता 120 बी जो दो दस्तावेजों के संबंध में दोषी ठहराया गया। एल.एन. कल्याणम जिनका भी उसी मुकदमे में विचारण किया गया और भारतीय दंड संहिता की धारा 471, सपठित

120 बी में दोषी ठहराया गया। दो मामले भारतीय दंड संहिता की धारा 466 और धारा 471, सपठित धारा 109 में की गई दोषसिद्घि के विरुद्घ कोई अपील नहीं की।

अभियोजन मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि अपीलार्थी पुरूषोतम दास डालमिया लक्ष्मीनारायण गौरीशंकर फर्म के भागीदारों में से एक थे जिसका मुख्य कार्यालय गया में और शाखा कलकत्ता में थी। कलकत्ता शाखा 19, **शम्भू मल्लिक लेन** में स्थित थी। 26 अप्रैल, 1952 काे अपीलकर्ता ने एक करोड़ रूपये मूल्य के कला रेशम धागे के आयात के लिए लाइसेंस के लिए आवेदन किया। 2 मई, 1952 को संयुक्त मुख्य आयात नियंत्रक, कलकत्ता ने अस्थाई रूप से लाइसेंस जारी किया। नियमों के अनुसार, इस लाइसेंस की पुष्टि दो महीने के भीतर आयात के उप या मुख्य नियंत्रक द्वारा की जानी थी और ऐसी पुष्टि पर यह एक वर्ष की अवधि के लिए वैध होना था। जारी होने की तारीख से दो माह के भीतर इसकी पुष्टि नहीं होने पर लाइसेंस रद्द माना जाना था। दो माह के अंदर इस अस्थाई लाइसेंस की पुष्टि नहीं की गई। अपीलार्थी को लाइसेंस की पुष्टि करने से इंकार करने के बारे में विधिवत सूचित किया गया था। अपीलार्थी की लाइसेंस की पुष्टि इंकार करने के विरूद्घ अपील सितम्बर 1952 में खारिज की गई। जारी किये गये अस्थाई लाइसेंस अपीलकर्ता को वापस कर दिये गये। अपील को खारिज करने एवं लाइसेंस की वापसी की

सूचना देने वाला पत्र 26 सितम्बर, 1952 को संयुक्त मुख्य आयात नियंत्रक के कार्यालय से जारी किया गया था।

आयात मुख्य नियंत्रक नई दिल्ली के कार्यालय से 29 सितम्बर, 1952 को पत्र जारी किया गया था जिसमें अपीलार्थी को 4 सितम्बर, 1952 के पत्र के संदर्भ में सूचित किया कि ऐसे मामलों पर फिर से विचार करने के लिए आयात और निर्यात के संयुक्त मुख्य नियंत्रक कलकत्ता को निर्देश जारी किये गये थे और उसे ऐसे मामलों में आगे कार्यवाही के लिए उस प्राधिकारी से सम्पर्क करने की सलाह दी गई थी। अपीलार्थी ने सही ही कहा कि इस पत्र का यह अर्थ नहीं लगाया गया कि उसकी अपील अस्वीकृति का आदेश अभी विचाराधीन है। उसने इस पत्र के आधार पर आयात व निर्यात के संयुक्त मुख्य नियंत्रक से सम्पर्क करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। इसकी बजाय उसने 7 अक्टूबर, 1952 को पत्राचार की वापसी के लिए आवेदन किया। वह पत्र व्यवहार 9 अक्टूबर, 1952 को उसे वापस कर दिया गया।

31 मार्च, 1953 तक कुछ नहीं हुआ, इस तारीख को अपीलार्थी ने आयात के मुख्य नियंत्रक, नई दिल्ली को कलकत्ता के आयात व निर्यात के संयुक्त मुख्य नियंत्रक की कार्यवाही पर अपनी शिकायत व्यक्त करते हुए एक लम्बा पत्र लिखा एवं सहानुभूतिपूर्ण निर्णय के लिए अनुरोध किया। आयात व निर्यात के मुख्य नियंत्रक ने 20 अप्रैल, 1953 के पत्र द्वारा

अपीलार्थी को सूचित किया कि पत्र में वर्णित कारणों से आयात व निर्यात के संयुक्त मुख्य नियंत्रक के आदेश को संशोधित नहीं किया जा सकता। इस पत्र में अपीलार्थी की फर्म को गलत नंबर दिया गया था। इसमें इसका सही नंबर '19' की बजाय '16' बताया गया। दूसरी बातों में इस पत्र का पता सही था। अपीलार्थी का कहना है कि उसे यह पत्र नहीं मिला।

अगस्त 1953, में अपीलार्थी की मुलाकात कलकत्ता में कल्याणम से हुई। **कल्याणम** ने अपीलार्थी से कहा कि वह **दिल्ली** में अपने एक परिचित राजन नाम के कार्यालय के माध्यम से उसके लाइसेंस को वैध करवा सकता है। ये दोनों व्यक्ति **अगस्त 1953** में दिल्ली आये और राजन से मिले। अपीलार्थी ने लाइसेंस वाली फाईल कल्याणम को सौंप दी जिसने बाद में उसे राजन को सौंप दिया। दो या तीन दिन बाद कल्याणम ने कथित जाली पृष्ठांकन वाले लाइसेंस को अपीलार्थी को लौटा दिया। कूटरचित पृष्ठांकन **2 मई, 1954** तक लाइसेंस की पुष्टि और उसके पुनः वैधकरण से संबंधित था। पुष्टिकारक पृष्ठांकन **2 जुलाई, 1952** का बताया गया था, और पुनः वैधकरण **25 अप्रैल, 1953** का बताया गया था।

इसके बाद, पुनः वैध लाइसेंस के आधार पर आदेश दिये गये और जब माल पहुंचा तो उसे मद्रास में खाली करने का प्रयास किया गया। मद्रास में समाशोधन कार्यालय को पुष्टि की वास्तविकता पर और पुनः वैधकरण के पृष्ठांकान पर संदेह हुआ और संदेह की पुष्टि होने पर मामले

को पुलिस को सौप दिया गया। जांच और प्रारम्भिक पूछताछ के परिणामस्वरूप अपीलार्थी और कल्याणम को विचारण के लिए उच्च न्यायालय काे सुपुर्द किया गया।

आठ आरोप विचरित किये गये, पहला आराेप दोनों आरोपियों के बीच आपराधिक षडयंत्र से संबंधित था और इस प्रकार थाः

> "कि उक्त (1) पुरूषोतम दास डालमिया और (2) एल.एन. कल्याणम ने ज्ञात व अज्ञात व्यक्तियों के साथ 1953 के माह अप्रैल और दिसम्बर महीने के बीच कलकत्ता, हावड़ा, दिल्ली, मद्रास और अन्य स्थानों पर दो साल या उससे अधिक के कठोर कारावास से दण्डनीय अपराध के लिए आपराधिक षडयंत्र में शामिल होकर कूटरचना का अपराध प्रमाण पत्र द्वारा या आयात निर्यात नियंत्रण लाइसेंस संख्या **331913/48** (आयात नियंत्रक प्रति जिसे **ईएक्सटी. 5** तथा कस्टम प्रति जिसे **ईएक्सटी. 6**) जो कि लोकसेवक द्वारा बनाई गई तात्पर्यित थी, के पृष्ठांकन के पुष्टिकरण और पृष्ठांकन के वैधकरण अर्थात मुख्य आयात और निर्यात नियंत्रक के अधिकारियों व कर्मचारियों और/या उक्त अनुज्ञप्ति जिस पर कूटरचित प्रमाण पत्र और पृृष्ठांकन के पुष्टिकरण व वैधकरण को बेईमानीपूर्वक या कपटपूर्वक यह

जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वे कूटरचित दस्तावेज के समान है, उपयोग किया और इस प्रकार पुरूषोतम दास डालमिया और एन.एल कल्याणम ने धारा **466** सपठित **120 बी** और/अथवा **471** सपठित **466** के तहत दण्डनीय अपराध कारित किया जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान मेंं है।"

आरोप संख्या 2, 3 व 4 लाइसेंस ईएक्सटी. 5. की प्रति पर गलत पृष्ठांकन के संबंध में थे। दूसरा आरोप धारा 466 भा.दं.सं., के अंतर्गत अकेले कल्याणम के खिलाफ था तथा आरोप संख्या 3 व 4 अपीलार्थी के विरूद्घ कल्याणम को कूटरचना के अपराध

को दुष्प्रेरण करने के संबंध में था और कूटरचित दस्तावेजों का असली के रूप में उपयोग करने के लिए था। आरोप संख्या 5, 6 व 7 लाइसेंस की काॅपी जिसका ईएक्सटी. 6 है, से संबंधित मामलों के संबंध में थे। आठंवा आरोप अकेले कल्याणम के विरूद्घ था और अपीलार्थी को उक्त लाइसेंस, की कस्टम प्रति ईएक्सटी. 6 को असली के रूप में उपयोग करने के लिए धोखाधड़ीपूर्वक एवं बेईमानीपूर्वक अपराध में दुष्प्रेरण से संबंधित था।

जूरी ने आरोप संख्या 3 व 6 और **धारा 466 सपठित 120 बी भा.दं.सं.** के संबंध में दोषी नहीं होने के संबंध में निर्णय दिया। जूरी ने अपीलार्थी के

विरूद्घ आरोपित अपराध अंतर्गत धारा 471 सपठित 120 बी तथा अन्य आरोप संख्या 4 व 7 में दोषी हाेने के फैसले को उलट दिया।

यह विवादित नहीं है और विवादित नहीं किया जा सकता है कि दो दस्तावेजों ईएक्सटी. 5 व 6 में कूटरचना की गई। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निम्नलिखित बिंदु उठाये गये:

(i) कूटरचित दस्तावेजों का असली के रूप में उपयोग करने का अपराध मद्रास में किये गये थे इसलिए कलकत्ता के न्यायालय को भा.दं.सं. की धारा **471** सपठित **466** के अपराध की सुनवाई का क्षेत्राधिकार नहीं था।

(ii) वैकल्पिक षडयंत्रों का आरोप नहीं लगाया जा सकता क्योंकि वे षडयंत्रकारियों के बीच विभिन्न समझोतों का परिणाम होना चाहिए।

(iii) विद्वान न्यायाधीश ने कुछ मामलों को उनके समक्ष उसी रूप में रखने का जूरी को गलत निर्देश दिया जैसा उसने किया। इस संबंध में मुख्य आलोचना यह थी कि (ए) आरोपों की पुष्टिकरण का समर्थन पूर्व डेटिंग से पता चल गया होगा कि लाइसेंस का पुनः वैधकरण एक कूटरचना थी। (बी) भले ही विभाग के उचित अधिकारी ने पुनः वैधकरण पर हस्ताक्षर किये हों। फिर भी वह पूर्व दिनांकित होने पर एक कूटरचना होगी। (सी) 20 अप्रैल, 1953 को आयात व निर्यात के मुख्य नियंत्रक का पत्र हांलाकि गलत तरीके से सम्बोधित किया गया था, अपीलार्थी तक पहुंच

गया होगा। (डी) विद्वान न्यायाधीश ने दृढतापूर्वक अपनी राय व्यक्त की और इससे जूरी के दिमाग पर अनुचित प्रभाव पड़ सकता था और उसे उसी निष्कर्ष पर आने के लिए मजबूर होना पड़ा। भा.दं.सं. की धारा 120 बी के अंतर्गत आपराधिक षडयंत्र के अपराध की कलक्तता उच्च न्यायालय को विचारण करने की अधिकारिता विवादित नहीं है। यह भी विवादित नहीं है कि आपराधिक षडयंत्र के अनुसरण में किये गये प्रत्यक्ष कार्य उसी संव्यवहार के क्रम में किये गये थे जिसमें साजिश और उसके तहत किये गये कार्य शामिल थे।

हांलाकि अपीलकर्ता के लिए यह तर्क दिया गया है कि **दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 177** को देखते हुये षड़यंत्र के अपराध की सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार रखने वाला न्यायालय ऐसे प्रत्यक्ष कृत्यों के द्वारा गठित अपराध की सुनवाई नहीं कर सकता है जो उसके अधिकार क्षेत्र से परे किये गए हों और ***जीवन बनर्जी बनाम राज्य ([1])*** के फैसले पर आधारित किया गया है। यह मामला निस्संदेह अपीलकर्ता के तर्क का समर्थन करता है। हमने इस सावधानीपूर्वक विचार किया और हमारी राय है कि यह सही निर्णय नहीं लिया गया है।

आपराधिक षडयंत्र के अपराध और इसके अनुसरण में किए गए सभी प्रत्यक्ष कृत्यों के एक साथ

(1) ए.आई.आर 1959 कल. 500.

मुकदमा चलाने की वांछनीयता स्पष्ट है। आपराधिक षडयंत्र का अपराध स्थापित करने के अभियोजन द्वारा प्रत्यक्ष कृत्य करने की साक्ष्य दी जानी चाहिए। ऐसे साक्ष्यों का परीक्षण आवश्यक रूप से अभियुक्त की ओर से जिरह द्वारा किया जाएगा। न्यायालय को ऐसे साक्ष्यों की विश्वसनीयता

के बारे में निर्णय लेना होगा और ऐसे साक्ष्यों के आधार पर यह निर्धारित करना होगा कि आपराधिक षडयंत्र का अपराध बनता है या नहीं। यह सब करने के बाद, न्यायालय बहुत आसानी से विभिन्न प्रत्यक्ष कृत्यों को करने वाले अभियुक्त के संबंध में 'दोषी' या 'दोषी नहीं' का निष्कर्ष दे

सकता है। यदि कुछ प्रत्यक्ष कृत्य आपराधिक षडयंत्र के अपराध की सुनवाई करने वाले न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बाहर किए गए थे और यदि विधि यह है उन प्रत्यक्ष कृत्यों का विचारण उस न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता तो इसका आशय यह होगा कि या तो अभियोजन को उन अभियुक्तों पर उनके प्रत्यक्ष कृत्यों के लिए सही अभियोजन करने के उनके अधिकार को छोड़ने के लिये मजबूर किया जायेगा या अभियोजन और अभियुक्त दोनाेंं को अनावश्यक परेशानी में डाल दिया जायेगा क्योंकि अभियोजन पक्ष को वहीं साक्ष्य दूसरी बार पेश करना होगा और अभियुक्त को उसी साक्ष्य की विश्वसनीयता का दूसरी बार परीक्षण करना होगा। दूसरे

न्यायालय का समय भी दूसरी बार उसी प्रश्न का निर्धारण करने में व्यतीत होगा। दूसरे न्यायालय को पहले न्यायालय से भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचने का जोखिम होगा। दूसरे न्यायालय में यह आग्रह करना भी संभव हो सकता है कि इस न्यायालय ने ***प्रीतम सिंह बनाम पंजाब राज्य (***[1]***)*** में जो कहा है, उससे भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचने में सक्षम नहीं हैः

"प्रीतम सिंह लोहारा को उस आरोप में बरी करना इस निष्कर्ष के समान था कि अभियोजन पक्ष उनके रिवाॅल्वर प्रदर्श पी-56 के कब्जे को स्थापित करने में विफल रहा था। उस रिवाॅल्वर का कब्जा तथ्य का प्रश्न था जिसे अभियोजन द्वारा स्थापित किया जाना था। इससे पहले कि उसे उस अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सके जिसके लिए उस पर आरोप

विरचित किया गया था। यह तथ्य अभियोजन पक्ष के खिलाफ पाया गया था और ऊपर उद्घत लाॅर्ड मैक डर्मोट की टिप्पिणयों को ध्यान में रखते हुए, प्रीतम सिंह लोहारा के खिलाफ क्राउन और उसके बीच कार्यवाही को किसी भी तरह से साबित नहीं किया जा सका।

इन परिस्थितयों में, जब तक दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा उन पर लगाए गए प्रावधान के अलावा किसी अन्य निर्माण की अनुमति नहीं देते, तब तक उन्हें आपराधिक षडयंत्र के अपराध की सुनवाई करने वाले न्यायालय को उस षडयंत्र के अनुसरण में किए गए प्रत्यक्ष कार्यों के भी सभी मामलों की सुनवाई करने

का अधिकार क्षेत्र देने के लिए माना जाना चाहिए। हमें कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त विचार के समर्थन में कोई ठोस कारण नहीं मिला।

यह सच है कि विधायिका अपराधों की सुनवई के लिए न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को महत्व देती है। न्यायालयों का क्षेत्राधिकार दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का क्षेत्राधिकार जो विशेष प्रकार के अपराधों की सुनवाई के लिए न्यायालयों की शक्ति के संबंध में है। यह एक ऐसा क्षेत्राधिकार है जो मामले की जड़ तक जाता है और यदि कोई न्यायालय जो किसी विशेष अपराध

की सुनवाई करने के लिए अधिकृत नहीं है, वह इसकी सुनवाई करता है, तो पूरा विचारण शून्य हो

जाता है। दूसरा क्षेत्राधिकार वह है जिसे प्रोदशिक क्षेत्राधिकार कहा जा सकता है। इसके साथ वैसा ही महत्व नहीं जुड़ा है। यह **दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 178, 188, 197(2) और 531** के प्रावधानों से स्पष्ट है। **धारा 531** में प्रावधान है किः

"किसी भी आपराधिक न्यायालय के किसी भी निष्कर्ष,

सजा या आदेश को केवल इस

(1) ए.आई.आर 1956 एससी 415, 422.

आधार पर अपास्त नहीं किया जाएगा कि जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही जिसके आधार पर वह निष्कर्ष पर पहुंचा या पारित किया गया था, वह गलत सेशन खण्ड, जिला, उपखण्ड या अन्य स्थानीय क्षेत्र में हुई, जब तक कि यह प्रकट नहीं हो कि ऐसी त्रुटि वास्तव में न्याय की विफलता का कारण बनी है।"

किसी मामले की सुनवाई ऐसे न्यायालय द्वारा की जा रही है जो अपराध की सुनवाई करने मे सक्षम नहीं है और ऐसे न्यायालय द्वारा जो अपराध की सुनवाई करने में सक्षम है लेकिन उस क्षेत्र पर उसकी कोई प्रादेशिक क्षेत्राधिकारता नहीं है जहां अपराध किया गया था, के परिणाम में इस तरह के अंतर का कारण समझ में आता है। अपराधों की सुनवाई करने की शक्ति सभी न्यायालयों को उन न्यायालयों की क्षमता और जिम्मेदारी के संबंध में विधायिका के दृष्टिकोण के अनुसार प्रदान की जाती है। क्षमता और जिम्मेदारी की भावना जितनी अधिक होगी, विभिन्न अपराधों पर उन न्यायालयों का क्षेत्राधिकार उतना ही बड़ा होगा। प्रादेशिक क्षेत्राधिकारता किसी विशेष न्यायालय के कार्य के संबंध में प्रशासनिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त की सुविधा, जिसे अपने ऊपर लगाए गए आरोप को पूरा करना हेागा और गवाहों की सुविधा जिन्हें न्यायालय में पेश होना होता है, को ध्यान में रखते हुये केवल सुविधा के तौर पर प्रदान की

जाती है। इसलिए धारा **177** में यह विहित किया गया है कि किसी अपराध की सुनवाई सामान्यतः उस न्यायालय द्वारा की जाएगी जिसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमा के भीतर वह अपराध किया गया है।

सहायक सत्र न्यायाधीश, नाॅर्थ आरकोट बनाम रामास्वामी असारी ([1]) में यह कहा गया थाः

> "अध्याय XV, उप-अध्याय (ए) की योजना जिसमें **धारा 177 से 189** आती है, मुझे ऐसा लगता है कि इसका उद्देश्य उस दायरे को जितना संभव हो उतना बढ़ाना है जहां किसी अपराध की सुनवाई हो सकती है और तकनीकी दलील की सफलता से अभियोजन पक्ष को होने वाली असुविधा को यथासंभव कम से कम किया जा सकता है कि अपराध विचारण न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमा के भीतर नहीं किया गया था।"

धारा 177 व धारा 233 की भाषा में अंतर देखना और भी महत्त्वपूर्ण है। **धारा 177** सामान्यतः विहित करती है कि सामान्यतः हर अपराध की सुनवाई उस न्यायालय द्वारा की जाएगी जिसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमा के भीतर यह किया गया था। इसमें यह नहीं कहा गया है कि **धारा 179 से 185 और 188** में उल्लिखित मामलों को छोड़कर या विशेष रूप

से कानून के किसी अन्य प्रावधान द्वारा प्रदान किए गए मामलों में ऐसे न्यायालय द्वारा इसकी सुनवाई की जाएगी। यह विचारण के स्थान को खुला छोड़ देता है। इसके प्रावधान अनिवार्य नहीं है। इसका कोई कारण नहीं है जो **धारा 233 से 239** के प्रावधानों का **धारा 177** के अपवाद प्रदान नहीं कर सकता यदि वे किसी विशेष अपराध की सुनवाई अन्य अपराधों के साथ एक ही न्यायालय में करने की अनुमति देते हैं। दूसरी ओर, धारा 233, अपराधों की विचारण से संबंधित, पढ़ा जाता हैः

"प्रत्येक विशिष्ट अपराध के लिए जिसमें किसी भी व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है, एक

अलग आरोप होगा, और ऐसे प्रत्येक आरोप पर **234, 235, 236 और 239** में उल्लिखित

मामलों को छोड़कर अलग से विचारण होगा।"

भाषा बहुत ही मार्मिक है, एक स्पष्ट निर्देश है कि प्रत्येक विशिष्ट अपराध के लिए एक अलग आरोप होना चाहिए और इस तरह के मामले से कोई भी विचलन केवल धारा 234, 235, 236 और 239 में उल्लिखित मामलों में होगा।, यह सच है कि इसे स्पष्ट शब्दों में या तो **धारा 235 या धारा 239** में कहा गया है कि उनके प्रावधान किसी न्यायालय में अपराधों

या उनमें उल्लिखित व्यक्तियों के संयुक्त विचारण इस तथ्य के बावजूद कि जिन अपराधों का विचारण किया जाना है वे

(1) (1914) आईएल आर. 38 मद. 779, 782,

उस विशेष न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में किए गए थे या नहीं, को उचित ठहराएंगे, लेकिन, हमारी राय में, इन दो धाराओ में प्रावधानों की व्याख्या ऐसी ही होनी चाहिए। धाराएं स्पष्ट रूप से यह नहीं बताती है कि ऐसे सभी अपराध जिन पर एक साथ आरोप लगाया जा सकता है और विचारण किया जा सकता है या जिनके लिए कई व्यक्तियों पर एक साथ आरोप लगाया जा सकता है और विचारण किया जा सकता है जो उन पर मुकदमा चलाने वाले न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर घटित होने चाहिये। प्रावधान सामान्य शब्दों में है, **धारा 235 की उपधारा (1) से (3)** उन अपराधों के लिए एक ही विचारण में आरोप लगाए जाने और मुकदमा चलाए जाने के बारे में प्रावधान विहित करती है जो एक ही संव्यवहार में घटित अपराधाेंं में से किसी एक पर क्षेत्राधिकारिता रखता हो। **धारा 235** का दृष्टांत भी उन स्थानों का जहां अपराध किये गये, का कोई संदर्भ नहीं देता। विशेष रूप से, दृष्टांत (सी) तब भी लागू हो सकता है जब उसमें उल्लिखित अपराध विभिन्न न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के भीतर के स्थानों पर किए गए हो। इसी प्रकार, **धारा 239** में प्रावधान है कि एक ही संवयवहार के दौरान किए गए एक ही अपराध के लिए विभिन्न व्यक्तियों

या एक ही संव्यवहार में किये गये विभिन्न अपराधों के लिये व्यक्तियों पर एक साथ आरोप लगाया जाए और उनका एक साथ विचारण किया जाए। ऐसे अपराधों और व्यक्तियों पर एक साथ विचारण नहीं चलाया जायेगा यदि कुछ अपराध उनमें से न्यायालय की क्षेत्राधिकारिता के बाहर किए गए हैं जो कि अन्य अपराधों की सुनवाई कर सकता है यदि अपीलकर्ता के लिए तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है तो यह निर्वचन उक्त धारा के अपवाद उपबंधित करने के समान होगा।

संहिता की धारा 235 और 239, सक्षम धाराएं हैं। विधायिका ने सही रूप में उस अभिव्यक्ति का उपयोग नहीं किया है जो एक ही संव्यवहार में विभिन्न अपराधों के लिये विभिन्न व्यक्तियों पर या एक ही विचारण में विभिन्न अपराधों के लिये एक व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए न्यायालय को बाध्य कर देती। इस तरह के अनिवार्य प्रावधान करने का लोप अनिवार्य रूप से विधायिका की मंशा को इंगित नहीं करती है कि कुछ अपराधों की सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार रखने वाला न्यायालय उसी संव्यवहार के दौरान लेकिन उसके क्षेत्राधिकारिता से परे किसी अपराध की सुनवाई नहीं कर सकता है ।

दण्ड प्रकिया संहिता की **धारा 235 और 239** के प्रावधानों में विधायिका के अनुमोदन के बारे में विवेचन कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं है। *बिस्सेस्वर बनाम सम्राट ([1])* में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा या *इन रेः दानी ([2])*

में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा और सच्चिदानंदम बनाम गोपाल अयंगर ([3]) में पहुंचा जा सकता है जब पाया जाता है कि कुछ मामले ऐसे थे जिनमें विपरीत दृष्टिकोण व्यक्त किया गया था। हालांकि, निर्धारण के तहत प्रश्न पर असर डालने वाला केस कानून अल्प है।

गुरदित सिंह बनाम एम्परर ([4]) में पंजाब में मोंटगोमरी जिले में एक व्यक्ति की हत्या का

षडयंत्र किया गया और उस षडयंत्र के अनुसरण में उस व्यक्ति की हत्या का प्रयास संयुक्त प्रान्त रूड़की में मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार के भीतर किया गया था। ब्राॅडवे जे. ने कहाः

> "ऐसा प्रतीत होता है कि, सही या गलत, यह आरोप लगाया गया है कि षडयंत्र के द्वारा या उकसावे के द्वारा दुष्प्रेरण मोंटगोमरी जिले में हुआ था, और इसलिए, मामले की सुनवाई या तो रूड़की या मोंटगोमरी में की जा सकती है। धारा 180, दंड प्रक्रिया संहिता इस बिंदु पर स्पष्ट है और आगे किसी चर्चा की आवश्यकता नही है।"

(1) ए.आई.आर 1924 कल, 1034

(2) एसआईआर 1936 मद. 317.

(3) (1929) आई.एल.आर 52 मद। 991, 994,

(4) (1917) 13 क्रि.एल.जे. 514, 517

इन रिः गोविंदस्वामी ([5]) में एक व्यक्ति ने एक ही रात में ए और बी की एक के बाद एक हत्या कर दी। ए और बी के घरों को एक सड़क द्वारा विभाजित किया गया था जो कि दो जिलाे के बीच की सीमा बनाती थी। अभियुक्त को ए और बी की हत्याओ के विचारण के लिए विभिन्न न्यायालयों में भेजा गया था, जिनके क्षेत्राधिकारता में ए ही हत्या और बी की हत्या के अपराधों की सुनवाई की गई थी। विद्वान न्यायाधीशों ने कहाः

"मामले का एक और पहलू है जिस पर हम कुछ टिप्पणियां करना चाहेंगे। एक ही अपीलार्थी द्वारा उसी रात को एक के बाद एक कथित हत्या के इन दो मामलों में, क्योंकि वे एक ही संस्वीकृति में थे, स्पष्ट रूप से उन पर एक ही सेशन जज के यहाँ मुकदमा चलाया जाना चाहिए था।

हालांकि, गोविंदन सेरवई और मलयप्पा कोनन के घरों के बीच की सड़क तिरूचरापल्ली और तंजोर जिलों के बीच की सीमा लगती है और एक हत्या तिरूचिरापल्ली के सेशन डिवीजन के क्षेत्राधिकारता में और दूसरी तंजोर जिले के सेशन डिवीजन के क्षेत्राधिकारता में की गई। षडयंत्रकारी), केवल एक यही कारण प्रकट होता है कि इन हत्याओ में अलग-अलग आरोपपत्र दायर किये गये। विद्वान लाेक अभियोजक इस बात से सहमत है कि **धारा 234(1),** सीआर.पीसी दोनों के अंतर्गत दोनों हत्याओ की धारा

के तहत एक साथ मुकदमा चलाने में कोई बाधा नहीं थी और यह वास्तव में स्पष्ट है कि एक ही अदालत को इन दोनों हत्याओ को डील करना चाहिये था।"

आपराधिक न्यायालयों के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के संबंध में **धारा 177 से 188** के अधीन धारा 234 सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार दोनों मामलों की सुनवाई दो सत्र न्यायालयों में से किसी एक द्वारा नहीं की जा सकती।

सच्चिदानंदम बनाम गोपाल अयंगर ([1]) *आ ेजर्स, जे.में, बिसेस्वर बनाम एम्परर* ([2]) के रूप में रिपोर्ट किए गए मामले पर भरोसा करते हुए कहा गया कि जब तक किसी अपराध का दुष्प्रेरण उसके क्षेत्राधिकारता के भीतर नहीं होता है, तब तक एक न्यायालय 239 के प्रावधान का लाभ मूल अपराध के विचारण के साथ इस तरह के दुष्प्रेरण के अपराध के विचारण करने के लिए नहीं उठा सकता है।

> " मुझे इस मामले के बारे में संदेह है, मुझे कहना होगा; लेकिन इस पर सर्वोत्तम विचार करते हुए, और कलकत्ता उच्च न्यायालय की राय की इस अभिव्यक्ति के साथ, में यह सोचने के लिए इच्छुक हूं कि क्षेत्राधिकारिता, आरोप का आधार है। संहिता में निर्धारित सभी बाद की

प्रक्रियाओ में मौजूद के रूप में आयात या समझा जाना चाहिए; और यदि ऐसा है, तो इसे स्पष्ट रूप से धारा 239 की नियंत्रित करना चाहिए।"

किसी अधिनियम के प्रावधानों के विशेष निर्वचन में विधायिका की मंजूरी कोई बदलाव नहीं करने के कारण केवल तभी मानी जाती है जब कुछ प्रावधानों पर एक निश्चित निर्माण करने वाले मामलों की लगातार श्रृंखला रही हो।

अंत में, हम जिस दृष्टिकोण को अपनाने के इच्छुक हैं, उसका एक निहित समर्थन *बाबूलाल चौखानी बनाम द किंग एम्परर (3)* में न्यायिक समिति की टिप्पणियों से प्राप्त किया जाना हैः

"न ही धारा **239(डी)** में निर्दिष्ट अपराधों की संख्या की कोई सीमा है। एकमात्र सीमा यह है कि अभ्यारोप 'एक ही संव्यवहार' के दौरान किए गए' अपराधों का होना

(5) ए.आई.आर 1953 मद.- 372, 373. (1) (1929)आई.एल.आर 52 मद. 991, 994. (2) ए.आई.आर 1924 कल. 1034.(3)(1938) एल.आर 65 आई.ए. 158, 175, 176. चाहिए। अर्थ का दायरा जो भी हो 'एक ही संव्यवहार' शब्दों में शामिल किया जा सकता है, वर्तमान मामले के लिए यह कहना पर्याप्त है कि यदि कई व्यक्ति अपराध करने का षडयंत्र

रचते हैं, और षडयंत्र के अनुसरण में प्रत्यक्ष कार्य करते हैं (एक, परिस्थिति जो किसी एक के कार्य को) प्रत्येक और (सभी षडयंत्रकारी का कार्य बनाती है), ये कृत्य एक ही संव्यवहार के दौरान किए जाते हैं, जिसमें षडयंत्र और उसके तहत किए गए कार्य शामिल होते हैं। षडयंत्र का गठन करने वाली आम सहमति और समझौते इसके अनुसरण में किए गए कृत्यों को एकजुट करने का काम करते हैं। यह इंगित करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की **धारा 239** के खंड (ए) के प्रावधानों के अनुसरण में विभिन्न व्यक्तियों पर एक साथ आरोप लगाने और मुकदमा चलाने के न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर एक मात्र सीमा यह है कि उन व्यक्तियों के खिलाफ एक ही संव्यवहार के दौरान किए गए अपराधों के लिये अभ्यारोप लगाया जाना चाहिए। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि एक षडयंत्र के अनुसरण में उनके द्वारा किए गए प्रत्यक्ष कृत्यों के संबंध में आरोपियों के खिलाफ अभ्यारोप जो कि एक ही संव्यवहार के दौरान किए गए अपराधों के संबंध में है और इसलिए इन अपराधों के आरोपी व्यक्तियों का **धारा 239** के खण्ड़ (ए) के अनुसरण में एक ही विचारण में एक साथ विचारण किया जा सकता है। इसलिए हम मानते हैं कि कलकता न्यायालय के पास **धारा 471 सपठित धारा 466** के तहत अपराधों के संबंध में अपीलार्थी के विचारण चलाने का क्षेत्राधिकार था। भले ही वे अपराध, षडयंत्र के अनुसरण में, मद्रास में किए गए थे।

अपीलकर्ता के लिए दूसरा तर्क वास्तव में इस आशय का है कि अपीलकर्ता पर वैकल्पिक रूप से दो साजिशों का आरोप लगाया गया था और ऐसा आरोप था।

कानून द्वारा अनुचित है, हालांकि, यह अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए षडयंत्र के आरोप की सही व्याख्या नहीं है। आरोप षडयंत्र का था, यह दो साल या उससे अधिक के कठोर कारावास के साथ दंडनीय अपराध को करने की साजिश थी। विशेष अपराध जो घटित हुआ, का वर्णन विकल्प में किया गया था। एक कूटरचना करने का और कूटरचित दस्तावेज का उपयोग करने का अपराध था और दूसरा कूटरचित प्रमाण पत्र व पृष्ठांकन के लाइसेंस को कपटपूर्वक या बेइमानीपूर्वक उपयोग करने के अपराध का था। पहले आरोप में अभिव्यक्ति 'और/या' का सीधा सा मतलब यह था कि उन्होंने जो अपराध करने की साजिश रची थी, उसमें या तो कूटरचना करना और बाद में कूटरचित दस्तावेज को असली के रूप में उपयोग करना शामिल था या उद्देश्य केवल कूटरचित पृष्ठांकन वाले लाइसेंस का उपयोग करना था। यद्यपि लाइसेंसों में कूटरचना करने की कोई साजिश नहीं थी। दूसरे शब्दों में, आरोप यह था कि अपीलार्थी और कल्याणम ने दो साल या उससे अधिक के कठोर कारावास से दंडनीय अपराध करने का षडयंत्र रचा और अपराधों में कूटरचित पृष्ठांकन के लाइसेंस का उपयोग करने का अपराध शामिल करने पर विचार किया गया और इसमें लाइसेंस के

कूटरचित करने का अपराध शामिल हो सकता है। इस प्रकार दो वैकल्पिक षड़यंत्रों का कोई मामला नहीं था। एक षडयंत्र था और यह संदेहास्पद था कि साबित हुए तथ्य षडयंत्रकारियों द्वारा किए जाने वाले

अपराधों की प्रकृति के बारे में क्या स्थापित करेंगे, इस रूप में आरोप चित्रित किया। जूरी को विद्वान न्यायाधीश ने पृष्ठ 14 पर अपने आरोप में कहाः

> "इस मामले में परिस्थितियों से, यह बहुत स्पष्ट नहीं हो सकता है कि क्या उन्होंने वास्तव में दस्तावेजों में कूटरचना करने या करवाने के लिए आपस में कोई समझौता किया था या क्या वे केवल यह जानते हुए कि यह एक कूटरचित दस्तावेज है, को वास्तविक दस्तावेज के रूप में उपयोग करने के लिए सहमत हुए।इसलिए,आरोप इस विकल्प में है कि या तो वे इस दस्तावेज की कूटरचना करने के लिये या कूटरचना कराने के लिए आपस में सहमत हुए; या यों कहें कि पृष्ठांकन के पुष्टिकरण या पुर्नवैधीकरण की कूटरचना के लिए आपस में सहमत हुए; या वैकल्पिक रूप से, वे ऐसे कूटरचित दस्तावेज के उपयोगकर्ता के संबंध में यह जानते हुये कि यह कूटरचित है, आपस में सहमत हुये। इसलिएआरोप में 'और/या' दोनों

का उल्लेख किया गया है, या तो वे कूटरचना करने के लिए सहमत हुए या वे यह जानते हुए कि यह कूटरचित है इसका उपयोग करने के लिए सहमत हुए या वे दोनों करने के लिए सहमत हुए, दोनों कूटरचना करना और यह जानते हुए कि यह एक कूटरचित दस्तावेज है, इसका उपयोग करना।"

संहिता की **धारा 236** के प्रावधानों द्वारा ऐसा आरोप उचित है। इसलिए हमारी राय है कि षडयंत्र का आरोप किसी अवैधता से ग्रस्त नहीं है।

हमने जूरी को आरोप में कथित गलत दिशा-निर्देशों के संबंध में कही गई सभी बातों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और हमारी राय है कि आरोप इस दोष से ग्रस्त नहीं है। न्यायाधीश ने कुछ स्थानों पर सुस्पष्ट भाषा में व्यक्त किया है जो उन्हें साक्ष्य के कुछ टुकड़ों का प्रभाव प्रतीत होता है। लेकिन, हमारी राय में, यह ऐसी सेंटिग में नहीं है कि यह माना जाए कि जूरी को उस राय के अनुरूप निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य महसूस हुआ होगा। न्यायाधीश ने विभिन्न स्थानों पर कहा है कि जूरी उनकी राय से बंधी नहीं है, तथ्य के प्रश्नों पर उसे अपने निष्कर्ष पर आना होगा और तथ्य के सभी प्रश्नों पर निर्णय लेना जूरी का कार्य है।

जूरी को यह बताने में कुछ भी गलत नहीं है कि यदि समर्थन उचित विभागीय अधिकारी द्वारा किया गया होता और वे पूर्व-दिनांकित होते, तो भी कूटरचना होती। यह कानून का सही प्रस्ताव है। पूर्व दिनांकित दस्तावेज एक गलत दस्तावेज होगा। पूर्व दिनांकित पृष्ठांकन का ज्ञान, स्वाभाविक रूप से कूटरचना किए जाने की जानकारी होना बताता है।

आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक के 20 अप्रैल, 1953 के पत्र में गलती ऐसी नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जाए कि पत्र उचित पते पर नहीं भेजा जा सका। अपीलार्थी की फर्म 19, संभु मल्लिक रोड पर स्थित है और इस पत्र का पता संख्या 16 बताया गया है। दुकान संख्या 16, दुकान संख्या 19 से अधिक दूरी पर नहीं हो सकती है। दो दुकानों पर पत्र वितरित करने वाला डाकिया एक ही होना चाहिए। डाकिए नियमित पते पर आने वालों को उनके नाम से पहचानते हैं और पते में थोड़ी सी भी त्रुटि या चूक होने पर भी आम तौर पर उनका पता लगा लेते हैं। अपीलकर्ता की फर्म को संबोधित पत्र मृत-पत्र कार्यालय या आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक को वापस लौटाया जाना साबित नहीं किया गया है। यदि इसे दुकान नंबर 16 पर डाकिया द्वारा वितरित किया गया था, तो सामान्य शिष्टाचार में पड़ोसी दुकानदार नंबर 19 को पत्र भेज दिया होता। अपीलार्थी का आचरण यह पता लगाने के लिए कि उसका आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक को प्रस्तुत अभ्यावेदन का क्या परिणाम रहा। कोई जानकारी

नहीं करना भी इस दृष्टिकोण से सुसंगत है कि उसे आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक का उत्तर प्राप्त हुआ था। इन परिस्थितियों में, इस राय की अभिव्यक्ति कि पत्र अपीलकर्ता तक पहुंच गया होगा, को गलत दिशा में नहीं कहा जा सकता है। विद्वान न्यायाधीश का जूरी से उस मामले की संभावनाओ पर विचार करने के लिए कहना बिलकुल उचित है, जहां किसी आकस्मिक मामले के संबंध में कोई निश्चित साक्ष्य मौजूद नहीं है।हम यह नहीं मानते कि उठाए गए विवाद गलत दिशा में है। उपरोक्त के मद्देनजर, हम इस अपील में कोई बल नहीं देखते हैं और तदनुसार इसे खारिज करते हैं।

अपील खारिज,

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक **शिल्पी बंसल, (न्यायिक अधिकारी)** द्वारा किया गया है। **अस्वीकरणः-** यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंगेे्रजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।